विनोद कुमार शुक्ल

हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़! (2)

एक घर के सामने गाय बाँधने के लिए खूँटा गड़ा था। उस पर पतरंगी चिड़िया बैठी थी। उसकी लम्बी पूँछ अन्त में लकीर की तरह पतली थी। भैरा ने उसकी तरफ इशारा कर पूछा, "खंजन है?"

"नहीं। पतरंगी है।" बोलू ने कहा।

"क्या तुम खंजन चिड़िया को पहचानते हो?" भैरा ने पूछा। "हाँ।" बोलू ने कहा।

भैरा कुछ दौड़ता हुआ बोलू के पास गया। और कहा, "मैंने एक जादू सीखा है। अगर खंजन चिड़िया का पंख सिर पर रख लो तो गायब हो जाओगे।"

"फिर आएँगे कैसे?"

"सिर से पंख उतार लो तो आ जाएँगे," भैरा ने कहा।

"गायब होकर क्या कहीं चले जाते हैं?" बोलू ने पूछा।

"वहीं रहते हैं। जहाँ जाना चाहें जा सकते हैं। पर किसी को दिखते नहीं।"

"परन्तु मैं गायब होकर कहीं नहीं जा सकूँगा। चुपचाप गायब होकर वहीं खड़ा रहूँगा। जाने के लिए मुझे बोलना पड़ेगा और सब लोग जान जाएँगे कि बोलू बोल रहा है," बोलू ने कहा।

"पर तुम दिखोगे नहीं। गायब रहोगे," भैरा ने कहा।

"तुम गायब होकर चुपचाप जा सकते हो। गायब होकर क्या मैं तालाब में नहा सकता हूँ?"

"यह मुझको नहीं मालूम। नहाने में सिर पर रखा पंख गिर जाएगा तो दिखने लगेंगे," भैरा ने कहा।

"गायब होने पर क्या मुझको साँप काट सकता है?" बोलू ने पूछा

"मालूम नहीं। गायब होने के बाद जानेंगे।"

"गायब होने पर साँप भी नहीं देख सकेगा," बोलू ने कहा।

"तुम खंजन चिड़िया को मुझे पहिचनवा दो। मैं तुमका भजिया खिलाऊँगा।"

"पैसे लोगे?" बोलू ने कहा।

सिर से टोपी उतारकर भैरा पसीना पोंछने लगा। "अभी मुझे ात करनी है। मैं थकूँगा नहीं," भैरा ने रुककर फिर कहा, "भजि ैसे नहीं लूँगा।"

"पंख लेने के लिए तुम खंजन को मार डालोगे?" बोलू ने पूछा।

"नहीं मारूँगा। एक बिच्छू भी चाहिए।"

"पत्थर के नीचे ढूँढना पड़ेगा। बिच्छू का क्या करोगे?" बोलू ने पूछा।

"डंक निकालूँगा।"

"डंक का क्या करोगे?"

"नहीं बताऊँगा," भैरा ने कहा।

"तो मैं खंजन चिड़िया भी नहीं बताऊँगा," बोलू ने कहा।

बजरंग होटल थोड़ी दूर थी। "रुको। यहीं कुछ देर बात करते हैं," भैरा ने कहा।

परन्तु बजरंग महराज ने जान लिया था। भैरा की गन्ध आ गई हो।

"कहाँ गायब हो गया था?" ज़ोर की आवाज़ आई। अभी इसके बाद जंगल से शेर के दहाड़ने की आवाज़ आने लगी। भैरा हड़बड़ा गया। शायद डर भी गया था। भैरा ने जाते-जाते बोलू से कहा, "एड्ड दिन मैं सचमुच गायब हो जाऊँगा।" शायद यह जवाब बजरंग महराज के लिए भी था।

बजरंग होटल के सामने भट्टी थी, टीन से ढँकी हुई। फिर एक बड़ा बरामदा था। बरामदे में लकड़ी की बेंच और आड़ी-टेढ़ी टेबिलें रखी थीं। सभी टेबिलें ऐसी थीं कि अपने पाए पर बस टिकी हैं। हिलती-डुलती थीं। एक कप चाय टेबिल पर रखते तो टेबिल इस तरह धीरे-धीरे हिलती थी जैसे धीरे-धीरे फूँकने से चाय हिलती है। टेबिल के स्थिर होते ही चाय पीने लायक ठण्डी हो जाती थी। टेबिल पर यदि भजिया की प्लेट अभी स्थिर रखी है तो एक भजिया उठाने के बाद प्लेट कुछ सरक जाती और बिना देखे अन्दाज़ से दुबारा भजिया उठाते तो अन्दाज़ गलत हो जाता। यही हाल बेंच का था। बैठे-बैठे एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखते तो बेंच

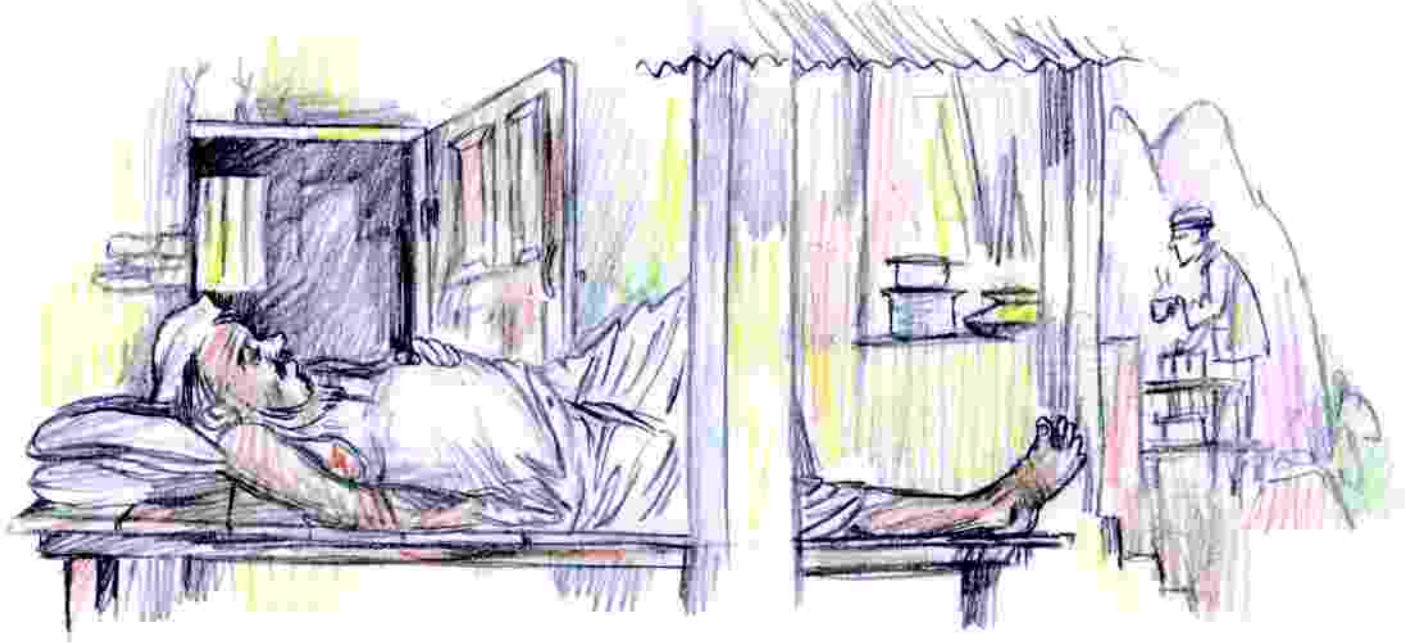

हिलकर ऐसी हो जाती थी कि सामने की अपनी प्लेट की जगह पड़ोस की प्लेट आ जाती थी। टेबिल पर पानी का गिलास नहीं रखा जाता था। गिलास रखते ही लुढ़क जाता था। पानी से भरे गिलास बरामदे पर चढ़ने-उतरने के लिए रखे पत्थर के पास रखे जाते। ग्राहक बरामदे में चढ़ते ही पहले पानी पीकर गिलास वहीं रख देते। बरामदे से उतरते समय भी यही होता। बजरंग महराज ग्राहकों की हरकतों पर कड़ी नज़र रखते।

बरामदे के बाद एक कमरा दिखता था। बरामदे का उजाला कमरे के दरवाज़े से अन्दर उतना ही जाता था कि इतना ही बचा है। कमरे के अन्दर प्रायः अँधेरा ही रहता जिसमें थोड़ा-सा उजाला कभी मिला दिया जाता हो। अगर बदली छा जाती तो बरामदे का भी बहुत कुछ अँधेरा कमरे के अन्दर चला जाता कि बरामदे में कुछ उजाला रहे। शाम को कमरे के अन्दर एक फीका बल्ब जलता था। यह देखने के लिए जलाया जाता कि अँधेरा कितना है। बरामदे में ट्यूब लाइट जब तक जलती कमरे का बल्ब नहीं जलाया जाता। कभी ट्यूब लाइट रात भर जलती जो तब चारों तरफ के घनघोर अँधेरे में कई दिनों के भटके हुए लोगों को सहारे की दिख गई दिशा की तरह होती। घनघोर जंगल के बीच यहाँ जो कुछ भी है भटककर आई हुई जैसी है। बिजली भी भटककर आई हुई जैसी। लौट जाने के लिए जब तब जाती हुई।

होटल का पिछवाड़ा दक्षिण की तरफ था। सूर्योदय होने के बाद थोड़े समय के लिए अन्दर के कमरे में भट्टी के सुलगते फैले धुएँ के बीच प्रकाश की एक किरण लकीर जैसी कुछ देर के लिए ठहरी हुई दिखाई देती। यह लकीर एक इशारे की तरह होती। इस लकीर का अन्त नहीं दिखता था। कम से कम बाहर से नहीं दिखता था। यह प्रकाश के अरगनी की तरह था। अँधेरे को झकाझक धोकर टाँगने की अरगनी।

सुबह हो गई। अगर बदली छाई हो तो कमरे में रात जैसा अँधेरा होता।

कमरे के दरवाज़े के पास एक तखत पर बजरंग महराज मोटे तकिए के सहारे रहते। धोती बण्डी पहनते थे। अधलेटे में सिर उतना ही उठा होता जिसमें टोपी पहनी जैसी रह सके। तखत में कुछ बिछा नहीं होता था। तकिए में प्रायः गिलाफ नहीं रहता था। तकिए को नाखून से खरोंचा जाए तो मैल निकलने का निशान दिखाई देता। बजरंग महराज की धोती, टोपी और भारी मोटा तकिया चिक्कट मैले थे। उजाले में अँधेरे की मैल की परत पड़ी थी। ऐसा चिक्कट अँधेरा कि भट्टी के धुएँ की कालिख से बनता हो। बजरंग महराज जहाँ लेटते थे वह बाहर से अन्दर का तिलस्म लगता था। कमरा गुफा जैसा लगता था। लगता कि एक गुफा को कमरे की तरह शामिल कर सामने एक बरामदा बना दिया गया हो। कमरे की लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान नहीं होता था। अँधेरा जहाँ सबसे अधिक था वहाँ शायद दीवाल हो। पर दीवाल दिखाई नहीं देती थी। शायद एक लम्बा गहरा बोगदा हो।

होटल का पिछवाड़ा एक बौने पहाड़ से सटा हुआ बना था। पीछे की तरफ बड़ी-बड़ी चट्टानें थीं। दूर-दूर तक चट्टानें बिखरी पड़ी थीं। पहले यह पहाड़ बौना न रहा हो। पहाड़ से चट्टानें अलग होकर बिखर गई हों। बची हुई चट्टानों के ढेर में यह बचा पहाड़ था। इस पहाड़ में एक जगह चट्टानों के बीच एक गहरी जगह थी। उसमें चरवाहे पत्थर डालते थे। पत्थर के नीचे गिरने की आवाज़ को सुनते। पत्थर के नीचे पहुँचने की आवाज़ कुछ समय बाद या उसी दिन नहीं सुनाई देती थी। सात दिन बाद सुनाई देती थी। इतना गहरा था। चारों तरफ के सन्नाटे में ध्यान से कान सटाकर सुनो तो लगता सिक्कों के ढेर पर पत्थर की आवाज़ तभी आती थी जब पत्थर डालने वाला कम से कम सात दिन बाद पहुँचता था। सात दिन बाद किसी भी

समय जब वह कान लगाकर सुनता तो खन्न से आवाज़ आती। सात दिन के पहले पहुँच जाए तो उसे पत्थर के नीचे गिरने की आवाज़ सुनाई नहीं देगी। पत्थर डालने के चाहे महीने भर बाद, साल भर बाद या कई सालों बाद बूढ़ा होकर पत्थर डालने वाला पहुँचता और फिर सुनता तब पत्थर गिरने की आवाज़ आती। जितने दिन बाद पत्थर फेंकने वाला आता उसे उतने ही दिन की गहराई में सिक्के पर पत्थर गिरने की आवाज़। आती सात दिन की गहराई सबसे समीप की गहराई थी। पहाड़ ऊँचा नहीं था पर अपने में बहुत गहरा था। गहराई में अन्दर कूदने के लिए एक आदमी जितनी जगह थी। परन्तु कोई कभी नहीं कूदा। गहराई के मुख से किसी को बाहर आते हुए नहीं देखा गया। वहाँ बैठ जाओ तो एक चींटी भी ऊपर आते नहीं दिखती। हो सकता है वहाँ से कोई ऊपर न आ पाता हो।

होटल के ठीक बाद जो घर बसा होगा वह किसी को नहीं मालूम। उस घर के लोगों को भी नहीं। कौन कब आया यह सभी शायद भूल चुके हों। किसी से पूछा तो कहता – वह घर बसा है। उससे पूछते तो वह कहता – नहीं। मेरे पहले से एक झोपड़ी थी जिसकी छप्पर हरी घास से बनी है। हरी घास की छप्पर वाले से पूछते तो वह कहता – मैं तो अभी बसा हूँ। मेरे छप्पर की घास अभी भी हरी है, सूखी नहीं। मेरे से पहले सूखी घास की छप्परवाला पड़ोसी बसा। इस तरह टाल देते। और बजरंग होटल के ठीक बाद कौन-सा घर बसा यह कोई नहीं जान पाया। हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी बरसों से हरी-भरी थी। कभी सूखती नहीं थी। भरी गरमी में भी नहीं। घास बहुत ऊँची हो गई थी। जब ज़ोर की हवा चलती तो छप्पर की घास झुकती और आसपास की झोपड़ी को ढाँप लेती। गरमी में जब सूर्य उत्तरायण होता तो सूर्य छप्पर की हरी घास से निकलता। अभी हरी घास के बीच छोटे-छोटे पीले फूलों के जंगली पौधे निकल आएँगे।

बस्ती के लोग और अधिकतर स्कूल के बच्चे आपस में बात करते कि जब कोई नहीं था तो होटल किसके लिए खुली। होटल के खुलने के दिन से अब तक केवल चाय, भजिया ही बनता रहा। भट्टी में पत्थर का कोयला जलाया जाता। इसका धुआँ दूर-से दिखाई देता। पास ही कोयले की खदान थी। सभी घरों में भी चूल्हा पत्थर के कोयले से जलता था। लोग घरों के लिए कोयला खोदकर ले जाते थे। एक दिन भैरा ने बताया कि उसके पिता बताते थे उनका पहला ग्राहक एक गिलहरी थी।

"गिलहरी।" सबको आश्चर्य हुआ।

"भजिया खाने आई थी?" कुछ चलकर बोलू ने भैरा से पूछा।

"नहीं। चाय पीने।" कहकर भैरा बोलू के पास गया। साथ में दो लड़के बीनू और प्रेमू, एक लड़की कूना भी थी। कूना सबसे छोटी थी। लड़के बोलू के साथ के थे।

"फिर दूसरा ग्राहक कौन था?" बीनू ने पूछा जो बोलू से कुछ दूर खड़ा था। बोलू की तरह चलकर बोलते हुए वह बोलू के पास जाकर खड़ा हो गया।

"दूसरा ग्राहक हाथी था।" भैरा ने कहा।

"हाथी !" कूना ज़ोर से चीखी।

"हाथी की प्याली तो बहुत बड़ी होगी।" बोलू चलकर कूना के पास जाकर खड़ा हो गया। बोलू को पास आया देखकर बोलू का हाथ पकड़ा और कहा "बोलू तू बोलना मत। नहीं तो मेरे पास से चला जाएगा।"

जारी...

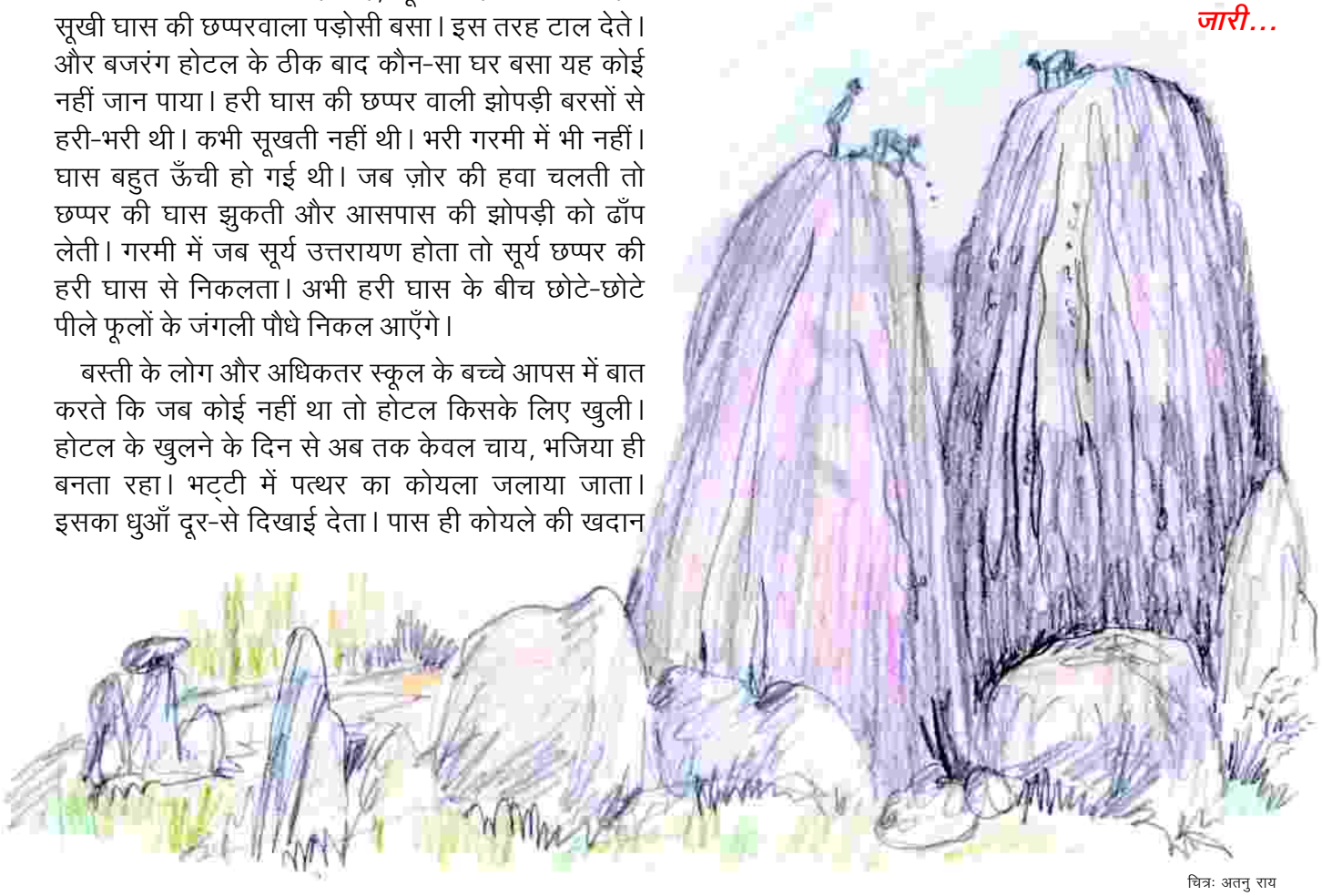

चित्रः अतनु राय